समकालीन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में प्रेमचंद की कहानियाँ : एक पुनर्पाठ

डॉ.जयचंद्रन.आर
आचार्य,हिंदी विभाग
केरल विश्वविद्यालय तिरुवनंतपुरम, केरल

सारांश :प्रेमचंद की कई प्रमुख रचनाओं को परत दर परत वर्णन करके उनके लेखन की समग्रता को प्रदर्शित करने का प्रयास इस आलेख में परिलक्षित है।इस में यह स्पष्ट होता है कि हाल ही में प्रेमचंद को दलित लेखक करार दिया जाना कितना बेमानी है। वास्तविकता तो यह है कि प्रेमचंद को किसी 'फ्रेम' में बैठा कर या पूर्वाग्रह के साथ देखना व्यर्थ है। उन्होंने वही लिखा जो उस समय घटित होता था।चाहे वह सवर्ण विरोधी हो, दलित पक्षधर हो या समाज की विडम्बनाओं पर सकारात्मक चिन्तन मात्र हो।

पिछले कुछ वर्षों में हिंदी साहित्य में दलित–प्रश्न ने कुछ ऐसा आकार ग्रहण किया है कि धुरंधर माने जाने वाले लेखक और आलोचक स्वयं को दलित–साहित्य का प्रवक्ता सिद्ध करने में जुट गए हैं। दलित जाति के लेखक जहाँ मात्र स्वयं द्वारा लिखे गए साहित्य को ही दलित जाति के साहित्य के अंतर्गत मानते हैं, वहीं सवर्ण लेखक इसे दलित–संवेदना का साहित्य कहते हैं। हाँ, इतना ज़रूर है कि दलित–संवेदनाओं से जुड़ी अभिव्यक्ति की आवश्यकता को सभी संवेदनशील लेखकोंआलोचकों ने स्वीकार किया है।दलित–परिप्रेक्ष्य में इसे सवर्ण मानसिकता ही माना जाएगा कि प्रेमचंद को पिछले कुछ समय से दलित लेखक भी माना जाने लगा है।

उन की कहानी "सद्गति" के मुख्य पात्र हैं–दुखी चमार, उसकी पत्नी झुरिया, पंडित घासीराम, पंडिताइन और एक व्यक्ति गोंड़ जाति का। दुखी अपनी बिटिया की सगाई का मुहूर्त निकलवाने के लिए पंडित घासीराम को न्यौतने की योजना बनाता है। उसके सामने तब अनेक समस्याएँ आ खड़ी होती हैं, जैसे कि "पंडितजी आएँगे तो बैठेंगे कि चीज पर?" चमारों की खटिया पर तो वह बैठेंगे नहीं। सीधा यानी श्रद्धापूर्वक दी जाने वाली खाद्य–सामग्री भी वह चमार की थाली में ग्रहण नहीं करेंगे। और तो और चमार के हाथ की छुई सामग्री को भी वह ग्रहण नहीं करेंगे। और पंडित जी के सामने खाली हाथ नहीं जाया जा सकता, नज़राने के लिए वह घास का एक बड़ा–सा गट्ठा साथ ले कर जाता है क्योंकि वह जानता है कि "उसे ख़ाली देख कर तो बाबा दर से ही दत्कार" देंगे। "सद्गति" और "सवा सेर गेहूँ" जैसी यथार्थवादी कहानियाँ लिखने पर प्रेमचंद को ब्राह्मण–विरोधी और ब्राह्मणों की ग़लत तस्वीर प्रस्तुत करने का आरोप झेलना पड़ा था। पं .रामकृष्ण शुक्ल "शिलीमुख" ने लिखा, "प्रेमचंद जी के प्रत्येक ग्रन्थ में जहाँ कहीं ब्राह्मणों के सुधार का प्रेमचंद जी ने ऐसा ठेका लिया है कि एक सेवासदन को छोड़ कर सर्वत्र ये ब्राह्मण निंदनीय और उपहास्य ठहराए गए हैं और उनको जूते लगवाए गए हैं।"

"सद्गति" में पंडित घासीराम को अपने घर पर आमंत्रित करने के लिए उन के घर जाने वाले दुखी का अंत कितना दारूण और भयावह होता है?वह रोंगटे खड़े कर देने वाला है। यह एक अति–नाटकीय अंत है। प्रेमचंद अपनी कहानियों में अकसर ही अति–नाटकीय स्थितियाँ उत्पन्न करते हैं।यही वे "कफ़न" में करते हैं, यही "पूस की रात" में यही "आदर्श विरोध" आदि अपनी बहुत–सी अन्य कहनियों में। और यह अति–नाटकीयता सिर्फ क्रूर और बीभत्स अवसरों पर ही आती हो ऐसा नहीं है। भावुक प्रसंगों में भी अनेक जगह वे "लाउड" हो जाते हैं, पारसी रंगमंच के कलाकारों की तरह।

"सद्गति" की भाषा अनेक स्थलों पर व्यंग्यात्मक है। प्रेमचंद का व्यंग्य भाषा की तहों में लिपटा होता है, वह उतना ऊपर नहीं नज़र आता कि आसानी से पकड़ा जा सके।व्यंग्योक्ति को वे सामान्य वार्तालाप या सामान्य विवरण के समान ही प्रस्तुत कर जाते हैं। "सद्गति" अभिजात, विशेष कर ब्राह्मण वर्ग के प्रति दलित वर्ग की अंधश्रद्धा तथा अभिजात–वर्ग की दलित वर्ग के प्रति कुत्सित सोच की यथार्थवादी कहानी है। यह दुखी की अंधनिष्ठा ही है कि वह पंडिताइन द्वारा उस के सिर पर अंगार फेंक दिए जाने पर भी खुद को ही दोषी मानता है।

"मंदिर" का प्रारंभ और अंत दोनों ही एक प्रकार से मातृ–वंदना से होता है। परंतु यह मात्र मातृ–प्रेम की कहानी नहीं है। इस का विषय है–मंदिरों में दलितों के प्रवेश के प्रति उच्च जातियों का कुत्सित, अमानवीय और रोषपूर्ण व्यवहार। अति–नाटकीयता इस में भी है। व्यंग्य की बारीक धार भी इस में है। यद्यपि स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद छुआछूत का रूप अब शायद इतना कुत्सित नहीं रह गया है जितना कि प्रेमचंद के काल में था, फिर भी हम यह नहीं कह सकते कि समाज से छुआछूत पूरी तरह ख़त्म हो चुकी है। यह कहानी हमें प्रेमचंद–काल के समाज से और उस के दुराग्रहों से परिचित कराती है।

ग़रज़ यह कि "भक्तों" ने सुखिया को "ठाकुरजी" के चरण नहीं छूने दिए। उधर परिस्थितियाँ सुखिया को ठाकुरजी के दर्शन को बाध्य कर देती हैं और वह रात के तीन बजे मंदिर के ताले को ईंट से तोड़ कर मंदिर में प्रवेश का प्रयत्न करती है कि पुजारी के आह्वान पर गाँव के पुरातन–पंथी अभिजन उसे घेर लेते हैं। कहानी में दलितों के मंदिर–प्रवेश के पक्ष में कटाक्ष भी है, व्यंग्य भी और आदर्शपरक उपदेश भी। समय की माँग के अनुरूप यह एक आदर्शपरक–यथार्थवादी कहानी है। इस का अंत भी "सद्गति" की भाँति दुखद ही है, परंतु इस की वीभत्सता "सद्गति" की बीभत्सता से भिन्न प्रकार की है। वहाँ प्रेमचंद ने एक व्यक्ति के माध्यम से जातीय क्रूरता को प्रस्तुत किया है तो यहाँ पर समूचे वर्ग में दोष के रेशे तलाशे हैं। "सद्गति" का दुखी

चमार नियतिवादी है और कष्टों के विरूद्ध नत हैल् परंतु "मंदिर" की सुखिया चमारिन नियतिवादी नहीं वह तर्कशील है, साहसी है और प्रतिक्रियाशील है। वह पुत्र–प्रेम के कारण अपने प्राण अवश्य त्याग देती है परंतु कुप्रथा का डट कर मुकाबला करते और लड़ते हुए प्राण त्यागती है। उस का चारित्रिक बल ही है जिस के कारण उस की लताड़ के प्रत्युत्तर में "किसी ने चूँ न की, और मिमियाया तक नहीं। पाषाण–मूर्तियों की भाँति सब–के–सब सिर झुकाए खड़े रहे।"जिस प्रकार "मंदिर" अछूत वर्ग के पूजागृहों में निषेध की कहानी है, उसी प्रकार "ठाकुर का कुआँ" का विषय जलाशयों और कुओं का बँटवारा है। अछूत वर्ग के लोग मनचाहे कुएँ–बावड़ी से पानी भर सकें, यह व्यवस्था प्रेमचंद–काल में आम तौर पर नहीं थी। आज भी भारत के अनेक क्षेत्रों में विलगाव की यह कुप्रथा मिल जाएगी। छुआछूत का यह विकरालतम रूप है कि अछूतों को सामान्य जनजीवन से ही पूरी तरह काट दिया जाए। वे अभिजात लोगों के घरों में तो घुस सकें, पूजागृहों में नहीं। वे उन के भोग का माध्यम तो बन सकें, उन के कुओं पर न चढ़ पाएँ। इस कहानी में से यदि बीच के क्षेपकों को हटा दिया तो यह एक अनुपम लघुकथा सिद्ध होगी। इन में से पहला क्षेपक है– "रात के नौ बजे...." से ले कर "....काम करने का ढंग चाहिए" तक का पैराग्राफल् तथा दूसरा क्षेपक हैं– "कुएँ पर दो स्त्रियाँ पानी भरने आई थीं" से ले कर "दोनों पानी भर कर चली गईं" तक। इन दोनों क्षेपकों का आभास भर दिया जा सकता था। खैर तो "ठाकुर का कुआँ" के मूल संदेशों और वेदनाओं को हम छुआछूत, अशिक्षा, आत्ममंथन, भय तथा विवशता के रूप में रेखांकित कर सकते हैं। "दूध का दाम" का कथानक यह कि गांव के ज़मींदार बाबू महेशनाथ की पत्नी को तीन लड़कियों के बाद चौथी संतान लड़का पैदा हुआ है। इस लड़के को टोटके के तौर पर माँ के दूध की बजाय भूँगी भंगन के दूध पर पाला गया "और भूँगी का लड़का ऊपर का दूध हज़म न कर सकने के कारण बार–बार उल्टी करता और दिन–दिन दुबला होता गया"।साल–भर बाद ही भूँगी का पति गूदड़ प्लेग की चेपट में आ गया। फिर, "एक दिन भूँगी महेशनाथ के घर का परनाला साफ़ कर रही थी। .....पूरा दाहिना हाथ परनाले के अंदर था कि एकाएक उस ने चिल्ला कर हाथ बाहर निकाल लिया। और उसी वक्त एक काला साँप परनाले से निकल कर भागा।लोगों ने दौड़ कर उसे मार तो डाला, लेकिन भूँगी को न बचा सके।" भूँगी का बेटा मंगल अनाथ हो गया। ज़मींदार के बेटे को अपने दूध से पालने वाली भूँगी भँगन के बेटे को उसे दूध का क्या प्रत्युपकार मिलता है, यही शेष कहानी में दर्शाया गया है। कहानियों की तरह नाटकीयता और रोमांच इस में भी है। प्रेमचंद की अनेक कहानियों में तीन लड़कियों के बाद लड़का अथवा तीन लड़कों के बाद लड़की अर्थात् "तेंतर" का जिक्र आता है। वे स्वयं भी तेंतर थे और इसी शीर्षक से उन्होंने एक कहानी भी लिखी है। "विध्वंस" की नायिका भुनगी नाम की एक विधवा, वृद्धा गोंड़िन है। भुनगी दाने भूनने का काम करती है और इसी व्यवसाय से अपना पेट पालती है। गाँव के जमींदार पंडित उदयभान को बेगार न देने के अपराध में उस के कारिन्दे भुनगी का भाड़ खोद डालते हैं भुनगी निरावलंब हो जाती है। भूख–प्यास से परेशान यह बुढ़िया ज़मींदार के कोप से निडर हो कर एक दिन अपना भाड़ पुनः बनाना शुरू करती है कि ज़मींदार की नज़र उस पड़ जाती है। दोनों ओर से तकरार होती है। ज़मींदार अपने चपरासियों को आदेश देता है कि वे भुनगी के पत्तियों के ढेर में आग लगा दें। भुनगी का सब कुछ स्वाहा हो जाता हैं। भुनगी स्वयं भी मर जाती हैं। इस कहानी में अति–नाटकीयता की चरम सीमा है।

इस कहानी में भुनगी भले ही गोंड़ जाति की है और ज़मींदार उदयभान ब्राह्मण जाति के, फिर भी इसे मात्र दलित–कहानी नहीं कहा जा सकता। ब्राह्मण, साहूकारों और चाटुकारों को जागीरें बाँटने और उन के माध्यम से लगान वसूलने की परंपरा का विकास भारत में काफ़ी पहले हो चुका था। मुग़लों ने अपने चहेतों और वफ़ादारों को "रईस" बनाया। अंग्रेज़ों ने इस परंपरा को अपनी स्वार्थसिद्धि हेतू भरपूर हवा दी, नए–नए "ज़मींदार" पैदा किए तथा उन्हें अनेक अलिखित अधिकार प्रदान किए। "विध्वंस" वस्तुतः सामंती क्रूरता की कहानी है। पंडित उदयभान और उस के कारिन्दे कितने क्रूर थे, यह भुनगी के चरित्र–विश्लेषण से भलीभाँति समझा जा सकता है। कथानक की दृष्टि से "विध्वंस" माधवराव सप्रे की कहानी "एक टोकरी भर मिट्टी" का प्रेमचंद परिवर्धित संस्करण प्रतीत होती है। "मंत्र" अमानवीय व्यवहार पर मानवीय व्यवहार की विजय की कहानी है। डॉ चड्ढा को अपने व्यवसाय में कम, अपने विलास कार्यक्रमों में अधिक रूचि है। ब्रिटिश काल के भारतीय इंजीनियरों, डॉक्टरों, वकीलों, साहूकारों तथा सरकारी अधिकारियों आदि संपन्न तबक़ों के लोगों की पहली चिन्ता स्वयं को अंग्रेज़ों के समकक्ष दिखाने और सिद्ध करने की अधिक रहती थी। सर ए. ओ. ह्यम द्वारा संस्थापित कांग्रेस और उस में शामिल प्रारंभिक दौर के भारतीयों की लड़ाई भी वस्तुतः यही थी कि स्तरीय क्लबों, रेस्तराओं और मनोरंजनालयों के बाहर लगाई "इंडियंस ऐंड डॉग्स आर नॉट अलाउड" लिखी तख्तियाँ वहाँ से हटाई जाएँ।अंग्रेजों की उक्त भेदभावपूर्ण नीति से उस समय तथाकथित उच्च वर्ग ही अधिक त्रस्त था। ग्रामीण और दलित वर्ग को इस बारे में कुछ सोचने का अवकाश उस काल में नहीं था, क्योंकि सब से पहले तो उसे अपने आसपास की ग्रामीण दमनकारी नीतियों से निपटना था। "विध्वंस" आसपास के दमन के ख़िलाफ़ संघर्ष की कहानी, और "मंत्र" उस से आगे की। "मंत्र" समाज में विभिन्न वर्गों की परस्पर उपयोगिता, सहभागिता और आवश्यकता सिद्ध करती है। क्लब–संस्कृति में डूब चुके और अपने समाज के निम्न वर्ग की संवेदनाओं से कट चुके डॉ.चड्ढा के मृतप्राय पुत्र को अंततः उस बूढ़े के हाथों ही जीवन मिला जिसे वर्षों पहले उन्होंने पूरी तरह अपमानित और उपेक्षित कर दिया था। समाज वस्तुतः विभिन्न श्रेणी के लोगों से युक्त एक समन्वित इकाई है इसमें किसी भी श्रेणी को कभी भी उपेक्षणीय मानना समाज के "ऐक्य" को भंग करने जैसा घातक सिद्ध हो सकता है।"जुरमाना" प्रशासनिक दायित्वों

और प्रशासनिक वृत्ति पर मानवीय दायित्व और कर्तव्य को प्राथमिकता देने की कहानी है। नौकरशाह के हृदय से मानवता के रेशे जब अलग हो जाते हैं, तब वह मानवताहीन क्रूर कृत्यों पर उतर कर बर्ताव करता है और वही उसे उचित भी दिखाई देता है। उस के लिए तब कर्म ही पूजा बन जाता है। ऐसी संवेदनहीन पूजा से निःसंदेह वह तानाशाह की श्रेणी में जा खड़ा होता है, आदमी नहीं रहता। परंतु "जुरमाना" के ख़ैरात ख़ाँ के हृदय से मानवता के रेशे हटे नहीं हैं।

"सवा सेर गेहूँ" को प्रेमचंद की एक लघुकथा "बाबाजी का भोग" का विस्तार माना जा सकता है। अंतर सिर्फ़ यह है कि "बाबाजी का भोग" का अहीर किसान रामधन किसी–न किसी प्रकार महात्माजी के भोजन का प्रबंध अपने घर से ही कर डालता है, बाहर से कुछ उधार नहीं लेता। "सवा सेर गेहूँ" का कुरमी किसान शंकर महात्माजी के भोजन के लिए सवा सेर गेहूँ गाँव के विप्र महाराज से उधार ले आने की गलती कर बैठता है। महात्माजी जितने भावहीन "बाबाजी का भोग" में हैं उतने ही "सवा सेर गेहूँ" में। किसी भी गृहस्थ के सामने अपनी सुविधा का सवाल खड़ा कर देना वे अपना अधिकार समझते हैं और गृहस्थ द्वारा येन–केन–प्रकारेण उस का समाधान उस का कर्तव्य। विप्र महाराज का चरित्र इस कहानी में "सद्गति" के पंडित जी से कहीं अधिक ऊँचा है। "सद्गति" का पंडित तुरंत चोट करता है, परंतु "सवा सेर गेंहूँ" का ब्राह्मण सात साल बाद अपना फन फैलाता है और फिर जीवन–पर्यंत शंकर का गात नहीं छोड़ता।प्रेमचंद की इस कहानी में उनके लेखकीय कौशल को महसूस किया जा सकता है। शंकर के परिप्रेक्ष्य में संसार "दुस्सार" ही है, "निस्सार" नहीं। व्यंग्य की जो धार इस पूरे पैरा में है वह अद्वितीय और अनुकरणीय है। देखने की बात यह है कि समस्त व्यंग्य के बावजूद कहानी का अंत वेदनापूर्ण है। व्यंग्य वस्तुतः वेदना की ही देन है। "मुक्तिधन" की तुलना शरतचंद्र की कहानी "महेश" से की जा सकती है।यद्यपि "महेश" अनेक अर्थों में अधिक संवेदनशील और प्रगतिशील कहानी है, तथापि "मुक्तिधन को भी सकारात्मक आदर्श की कहानी माना जा सकता है। इस में भी यद्यपि कुछ घटनाएँ बहुत ही तेज़ी के साथ घटती हैं और कहानी को अति–नाटकीयता प्रदान करती हैं, फिर भी वे कथानक को विकसित करने में सहायक ही सिद्ध होती हैं, उस पर पैबन्द जैसी नहीं लगती। संक्षेप में इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि "मुक्तिधन" जहाँ रहमान को एक सच्चा और ईमानदार इंसान सिद्ध करती है, वहीं लाला दाऊदयाल को भी उसी के समकक्ष खड़ा करती है। यह एक गाय के माध्यम से दो इंसानों की कहानी है जो विपरीत परिस्थितियों के तेवर को समय–समय पर झेलते–पहचानते हैं और मानवीय वृत्ति पर क़ायम रहते हैं इसी का परिणाम है कि दोनों के बीच से हिंदू–मुस्लिम का पर्दा हट जाता है। प्रेमचंद की कहानियों से पता चलता है कि उन के काल की स्त्री नारी–स्वातंत्र्य के मुहाने पर खड़ी स्त्री है। वह अपने काल के पुरुष की तुलना में कहीं अधिक साहसी, निडर और मुखर है।उस के भीतर सही को सही और ग़लत को ग़लत कहने की तड़प नजर आती है। प्रेमचंद की अधिकांश कहानियाँ उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड प्रयाग के किसान–मजदूर वर्ग के जीवन व सघंर्ष से जुड़ी कहानियाँ हैं। परिवार के पोषण के लिए यहाँ स्त्री को पुरूष की तुलना में अधिक कार्यशील, सचेत और चिन्तित दिखाया गया है जो कि स्वाभाविक ही है, क्योंकि परिवार पर आए किसी भी अर्थ–संकट से सब से पहले और सब से अधिक वही प्रभावित होती है।

चरित्र–विकास की दृष्टि से "पूस की रात" का हल्कू ही अतंतः "कफ़न" का माधो और घीसू बनने को विवश है। "सवा सेर गेहूँ" के शंकर को याद करें और फिर उस के बेटे को। पूरी उम्र मरने–खपने के बाद भी अगर ज़िल्लत और ज़लालत–भरी ज़िंदगी मिले तो किसी भी लापरवाही, नाकारापन और बेईमानी से क्यों जी चुराया जाए? आशा की कोई किरण ही जब समाज के ठेकेदारों ने कहीं न छोड़ी हो तो एक मेहनतकश को आख़िर किस के लिए ईमानदार रहना चाहिए? यही कारण है कि नीलगायों द्वारा पूरी खेती उजाड़ दिए जाने के बाद भी हल्कू अंत में "प्रसन्न–मुख" नज़र आता है।

"कफ़न" पर अनेक कोणों से विचार हो चुका है। अनेक आलोचकों की दृष्टि में यह प्रेमचंद को एक प्रगतिशील कथाकार सिद्ध करती है तो अनेक की दृष्टि में इस कहानी ने प्रेमचंद की प्रगतिशील छवि को धक्का पहुँचाया है। दलित–साहित्य से जुड़े कुछ लोग इस के माध्यम से प्रेमचंद को दलित–विरोधी क़रार देते हैं, क्योंकि इस के नकारात्मक चरित्र वाले पात्र घीसू और माधो चमार अर्थात् दलित जाति के हैं। दरअसल, "कफ़न" पर कोई भी आरोप लगाने से पहले उस के इस पैरा ध्यान देना बेहद ज़रूरी है"जिस समाज में रात–दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी और किसानों के मुक़ाबले में वे लोग जो कि किसानों की कमज़ोरियों से फ़ायदा उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा निश्चिन्त थे, वहाँ इस क़िस्म की ज़ेहनियत का पैदा हो जाना कोई हैरानी की बात न थी। हम तो कहेंगे कि घीसू किसानों के मुकाबले में ज्यादा सूक्ष्मद्रष्टा था और किसानों की खाली–दिमाग़ जमात में शामिल होने के बदले शातिरों की उपद्रवी जमात में शामिल हो गया था। हाँ, उस में यह योग्यता न थी कि शातिरों के नियमों की पाबंदी भी करता। इसलिए जहाँ उसकी जमात के और लोग गाँव के सरगना और मुखिया बने हुए थे, उसकी सारा गाँव निन्दा करता था। फिर भी, उसे संतोष यह तो था कि अगर वह ख़स्ताहाल है तो कम–से–कम उसे किसानों की–सी सख्त मेहनत तो नहीं करनी पड़ती और उसकी सादगी और बेज़ुबानी से दूसरे बेजा फ़ायदा तो नहीं उठाते।" "कफ़न" को प्रेमचंद के इसी वक्तव्य के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो यह कहीं से भी नकारात्मक कहानी नज़र नहीं आती, बल्कि शातिरों की उस दुनिया को बेनक़ाब करती कहानी सिद्ध होती है जो घीसू और माधो जैसे चरित्रों को जन्म देने की ज़िम्मेदार है। "घासवाली" वस्तुतः नायिका–प्रधान कहानी है। इस में मुलिया कितनी सुलझी हुई, निडर और मुखर स्त्री है मुलिया के चरित्र और उसकी तर्क–शक्ति का ठाकुर चैनसिंह पर

सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। वह सुधर जाता है। इस सुधार को हम काल–सापेक्ष मान सकते हैं। संभवतः प्रेमचंद का काल ही ऐसा रहा होगा। आज का समय होता तो ऐसी ढीठता पर चैनसिंह मुलिया का क्या हाल करता, सोचा जा सकता है। "घासवाली" के माध्यम से हम अपनी सामाजिक–नैतिक गिरावट का आकलन भी आसानी से कर सकते हैं।

"आगा–पीछा" एक क्लिष्ट मनोवैज्ञानिक कहानी है। समाज में एक आदर्श प्रस्तुत करने की भगतराम की उमंग उसे सर्वगुण–संपन्न कोकिला की ओर आर्किर्षत हो जाने को प्रेरित करती है जो कि एक वेश्या–पुत्री है और सामान्य जीवन जीना चाहती है। इसे प्रेमचंद का कथा–कौशल ही माना जाएगा कि कहानी के अंत से पूर्व भगतराम के परंपरावादी और भीरू चरित्र का उस के किसी भी कृत्य से, किसी भी प्रसंग में आभास तक नहीं मिलता।अंत में वह अपने भीतर के परंपरावादी दबाव को झेल नहीं पाता और मर जाता है। वस्तुतः भी ऐसे लोगों का मर जाना ही श्रेयस्कर है तथापि कहानी का अंत आदर्शवादी है, जिसे प्रेमचंद–काल की एक सीमा भी माना जा सकता है।

"निर्वासन" पूर्णतः कथोपकथन शैली की कहानी है। प्रेमचंद की बहुत–सी कहानियाँ अपने ही ढंग से पुरूष–सत्ता पर प्रहार करती हैं। व्यंग्य करने का प्रेमचंद का अपना ही अंदाज़ है। "निर्वासन" का नायक परशुराम अपनी पत्नी मर्यादा को मात्र इसलिए त्याग देने पर आमादा है कि कुंभ में उस से बिछुड़ने के बाद वह पता नहीं कहाँ–कहाँ रही, उसे अपनी ही पत्नी पर विश्वास अथवा सहानुभूति नहीं है, बल्कि अविश्वास और संदेह है।

"प्रेम का उदय" एक कंजड़ दंपती की कहानी है। भोंदू अन्य कंजड़ों की तरह चोरी–उठाईगीरी की बजाय श्रम से कमाई रोटी खाने में विश्वास रखता है, परंतु उसकी पत्नी बंटी एक महत्वाकांक्षी स्त्री है। एक दिन जब बंटी ने धमकी दी कि उसे यदि अच्छा रहन–सहन नहीं उपलब्ध हुआ तो वह कहीं और चली जाएगी, तो भोंदू टूट गया। उस ने एक धनी ठाकुर के यहाँ चोरी कर ली। बंटी धन्य हो गई। परंतु भोंदू एक गड़ेरिए का बकरा चुराते हुए पकड़ा गया पुलिस ने उसे जम कर धुना, लाल मिर्चों की धूनी लगाई, परंतु भोंदू ने कठोरता से कंजर–धर्म का निर्वाह किया टस से मस न हुआ। लेकिन पति की इस मरम्मत से बंटी का हृदय हिल जाता है और उस की समझ मे आ जाता है कि सादगी–भरी पहली ज़िंदगी ही ठीक थी, विलासिता–भरी यह ज़िंदगी नहीं। "शूद्रा" एक लंबी कहानी है। कहार जाति की गंगा एक विधवा है। गौरा उस की सुंदर और जवान पुत्री है। गाँव वाले उन्हें संदेह की दृष्टि से देखते हैं। इसी गौरा से पड़ोस के गाँव का एक युवक मँगरू विवाह कर लेता है और बाद में पछताता है। एक बार अपने बहनोई द्वारा इस बारे में धिक्कारे जाने के बाद मँगरू गौरा को बताए बिना कहीं चला जाता है। कालांतर में गौरा की मुलाक़ात संयोग से उस से विदेश में होती है। कहानी के अंत में मँगरू गौरा पर अविश्वासी हो उठता है और उसे "शूद्रा" करार देता है। उसके इस आक्षेप से आहत गौरा वहीं की एक नदी में कूद कर आत्महत्या कर लेती है। मँगरू भी उस के पीछे कूद कर मर जाता है। "शूद्रा" में घटनाएँ बंबइया फ़िल्मों के स्टाइल में घटती हैं। बहुत संभव है कि "शूद्रा" को इसी दृष्टि से लिखा गया हो। चरित्रों के विकास के बारे में प्रेमचंद की स्थिति कबीर–जैसी नज़र आती है। जिस तरह कबीर ने मुल्लाओं–मौलवियों और पंडो–तिलकधारियों को उनके अमानवीय कृत्यों के लिए समान रूप से धिक्कारा, प्रेमचंद ने भी सवर्णों या दलितों के बारे में एकांगी दृष्टिकोण नहीं अपनाया। यही कारण है कि रामकृष्ण "शिलीमुख" जैसे उन के समकालीन आलोचक उन्हें ब्राह्मण–विरोधी बताते रहे तो "कफन", "लांछन" जैसी कहानियों में दलित पात्रों के नकारात्मक चरित्र–चित्रण के कारण वर्तमान दलित–साहित्य आलोचक उन्हें दलित–विरोधी बता रहें हैं। "गुल्ली–डंडा" में थानेदार का लड़का "मैं" खेल में बेईमानी करने नीच–जात के लौंडे गया के हाथों पिटता है। लेकिन अभिजात धूर्तता उम्र के बढ़ाव के साथ पकती चली जाती है, शिक्षा और पद इस में चार चाँद लगा देते हैं। बीस साल बाद "मैं" इंजीनियर हो कर अचानक पुनः उसी क़स्बे में लौटता है। गया चमार निःसंदेह इंजीनियर नहीं बन सकता था, वह डिप्टी साहब का साईस ही बन पाता है। एक बार फिर गुल्ली–डंडा खेला जाता है और 'मैं' फिर बेईमानी करता है। गया प्रतिवाद नहीं करता, पदता रहता है। 'मैं' अभिमान में शेर हो उठता है। परंतु उस का यह अभिमान अगले दिन के गुल्ली–डंडा मुक़ाबले को देख कर टूट जाता है। तभी 'मैं' को पता चलता है कि बीते–कल गया जानबूझ कर पदता रहा था। वर्ग–चरित्र को विश्लेषित करती यह एक उल्लेखनीय कहानी है। मैं समझता हूँ कि प्रेमचंद किसी वर्ग विशेष के कथाकार नहीं।वह समग्र मानवीय संवेदनाओं के कथाकार हैं। "दूध का दाम", "ठाकुर का कुआँ", "सद्गति", "सवा सेर गेहूँ" जैसी कहानियाँ उन को दलितों, शोषितों और उपेक्षितों की समस्याओं के प्रति एक संवेदनशील कहानीकार सिद्ध करती हैं तथापि प्रेमचंद मात्र दलित–लेखक नहीं हैं। प्रेमचंद एक समग्र लेखक हैं। यही कारण है कि किसी को वह ब्राहाण–विरोधी नज़र आते हैं तो किसी को दलित–विरोधी। वस्तुतः जिस समाज में उनका पालन–पोषण हुआ, जिस समाज के संघर्षों को उन्होंने अपने भीतर जिया, उसमें रहते हुए और उसके बारे में लिखते हुए वह एकांगी दृष्टिकोण वाले रचनाकार हो ही नहीं सकते थे।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

कहानियाँ
1. दूध का दाम
2. विध्वंस
3. कफ़न
4. घासवाली
5. आगा–पीछा
6. निर्वासन
7. प्रेम का उदय
8. सद्गति
9. जुरमाना
10. सवा सेर गेहूँ
11. मुक्तिधन
12. शूद्रा
13. गुल्ली–डंडा

पत्रिका-

1.समकालीन भारतीय साहित्य, मार्च—अप्रैल,2001